Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

अलङ्कार सम्प्रदाय का साम्प्रतिक स्वरूप

डॉ. सन्दीप कुमार द्विवेदी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
भारतीय महाविद्यालय फ़र्रुखाबाद

Article Info
Volume 3 Issue 6
Page Number : 189-197

Publication Issue :
November-December-2020

Article History
Accepted : 01 Dec 2020
Published : 25 Dec 2020

सारांश – संस्कृत काव्यशास्त्र में अलङ्कार सम्प्रदाय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य भामह, दण्डी आदि सशक्त आचार्यों ने अलङ्कार तत्त्व को सर्वोत्कृष्ट काव्य तत्त्व के रूप स्थापित किया। कालान्तर में रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, रस एवं औचित्य सम्बन्धी विचारों से अलङ्कार को गौण काव्यतत्त्व की श्रेणी परिगणित किया जाने लगा। पण्डितराज जगन्नाथ के उपरान्त आधुनिक काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य तत्त्वों पर अभिनव दृष्टि से विचार कर नूतन व्याख्या प्रस्तुत की। कतिपय आचार्यों ने अलङ्कार के महत्त्व को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। इसका प्रस्तुतीकरण प्रस्तुत शोध पत्र का वर्ण्य विषय है।

संकेत शब्द – स्वातन्त्र्योत्तर, अलङ्कार, अलं ब्रह्म, भूषण, वारण, पर्याप्ति, अभिनवकाव्यालङ्कार सूत्र, काव्यालङ्कारकारिका।

सहृदयहृदयाह्लादक काव्यतत्त्व के आत्मस्वरूप की गवेषणा काव्यशास्त्रियों का प्रमुख वर्ण्य विषय रहा है। फलःस्वरूप काव्यशास्त्र में विभिन्न सम्प्रदायों का विकास हुआ। काव्यशास्त्र का अलङ्कारशास्त्र नामक अभिधान से व्यवहार होने से एवं अलङ्कारों की संख्या के उत्तरोत्तर विकास से इस सम्प्रदाय की समृद्धि द्योतित होती है। आचार्य भामह को अलङ्कार सम्प्रदाय का प्रतिष्ठापक आचार्य माना जाता है। आचार्य भामह ने अलङ्कार को काव्यघटक तत्त्वों में सर्वातिशायी महत्त्व प्रदान किया है–

न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितानन्म्।[1]

अपनी इस स्थापना के साथ अलङ्कार को सौन्दर्य का पर्याय माना। अलङ्कार शब्द व्युत्पत्ति भेद से सौन्दर्य एवं सौन्दर्य साधन इन दो अर्थों में पर्यवसित है। प्रथम व्युत्पत्ति **'अलङ्करणमलङ्कारः'** अथवा

1 काव्यालङ्कार भामह प्रथमपरिच्छेद 13

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

'अलङ्कृतिरलङ्कारः' के अनुसार अलम् उपपद कृ धातु से भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर सौन्दर्य का भाव अर्थात् सौन्दर्य अर्थ निष्पन्न होता है। द्वितीय **'अलङ्क्रियतेऽनेन'** से करण अर्थ में घञ् करने पर सौन्दर्य का साधन या करण अर्थ निष्पन्न होता है। अलङ्कार सम्प्रदाय के आचार्यों ने अलङ्कार शब्द की भाव व्युत्पत्ति को ही स्वीकार किया। आचार्य दण्डी ने काव्य के शोभाकर समस्त धर्मों का अलङ्कार में समावेश करते हुए अलङ्कार की ही प्रधानता स्वीकार की है।

काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।
ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कार्त्स्येन वक्ष्यति।[2]

रसवादी आचार्यों के द्वारा आत्मतत्त्व के रूप में स्वीकृत रस, भाव आदि को आचार्य भामह एवं दण्डी ने अलङ्कार रूप मानकर अलङ्कार का अंगित्व सिद्ध किया है। यहां तक कि उन्होंने सन्धि, सन्ध्यंग, वृत्ति, वृत्यंग और लक्षण आदि को भी अलङ्कार में समाविष्ट कर उसके महत्त्व एवं व्यापकत्व को प्रतिपादित किया है। –

यच्च सन्ध्यङ्ग–वृत्यङ्ग लक्षणाद्यागमान्तरे।
व्यावर्णितमिदं चेष्टमलङ्कारतयैव नः।।[3]

ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन से पूर्व आचार्य वामन ने **सौन्दर्यमलङ्कारः[4]** कहकर अलङ्कार को सौन्दर्य साधन स्वीकार कर ध्वनि सम्प्रदाय की अलङ्कार विषयिणी मान्यता की पूर्वपीठिका स्थापित की इन्होंने उपमादि अलङ्कारों के सन्दर्भ में ध्वनि सम्मत करण व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ को स्वीकार किया और अलङ्कार कटककुण्डलवत् बाह्य शोभाधायक तत्त्वों की श्रेणी में परिगणित होने लगे।

अलङ्कृतिरलङ्कारः। करणव्युत्पत्या पुनरलङ्कारशब्दोऽयमुपमादिषु वर्तते।[5]

आचार्य वामन ने अलङकारों के प्रभाव को कम करते हुए दण्डी द्वारा प्रतिपादित काव्यशोभाकर धर्म के रूप में गुणों को मान्यता प्रदान की तथा काव्य के उत्कर्षाधायक तत्त्व के रूप में अलङ्कार को मानकर गौण बना दिया।

काव्यशोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः । तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः।[6]

---

[2] काव्यादर्श 2/1
[3] काव्यादर्श 2/267
[4] काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति 1/1/2
[5] काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति पृ. 5
[6] काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति 3/1/1–2

अग्निपुराणकार ने अर्थालङ्कार से रहित कविता को विधवा की भांति कान्तिशून्य बतलाकर अर्थालङ्कार को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है। –

अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती।[7]

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक कुन्तकाचार्य ने अलङ्कार को काव्य का अविभाज्य अंग मानकर अपने ग्रन्थ को काव्यालङ्कार अभिधान से अभिहित किया। इनके अनुसार अलङ्कार शब्द शरीर के शोभाधायक कटक, कुण्डल आदि में मुख्यतया प्रयुक्त होता है। उसी प्रकार काव्य के शोभाधायक उपमादि अलङ्कारों में, गुणों में तथा तत्प्रतिपादक ग्रन्थ में औपचारिक रूप से प्रयुक्त किया जाता है।

अलङ्कृतिरलङ्कार्यमपोद्धृत्य विवेच्यते।
तदुपायतया तत्त्वं सालङ्कारस्य काव्यता।।[8]

आचार्य आनन्दवर्धन ने अलङ्कारवादी आचार्यों की अङ्गित्व रूपी मान्यताओं का खण्डन करते हुए कहा कि – अलङ्कार काव्य के अङ्गभूत तत्त्व के रूप में स्वीकार्य हैं किन्तु अङ्गी के रूप में इनका प्रतिपादन युक्तिसंगत नहीं है। –

विवक्षा तत्परत्वेन नाङ्गित्वेन कदाचन।[9]

आचार्य आनन्दवर्धन ने काव्यात्मतत्त्व के रूप में ध्वनि को प्रतिष्ठित किया तथा ध्वनि की विभिन्न व्युत्पत्तियों के माध्यम से काव्य के सभी धर्मों को ध्वनि में समाविष्ट कर प्रतिपादन किया है।–

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः।[10]

इसके अनन्तर अधिकांश काव्यशास्त्री आचार्यों ने ध्वनि को ही काव्य की आत्मा माना; जिनमें आचार्य मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि प्रमुख हैं। अलङ्कार को महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हुए कतिपय आचार्यों ने उसे काव्य के अनिवार्य तत्त्व के रूप में परिभाषित करने का प्रयास अवश्य किया है। आचार्य मम्मट प्रतिपादित काव्यलक्षण 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि' पर आक्षेप करते हुए चन्द्रालोककार आचार्य जयदेव ने कहा है –

[7] अग्निपुराण 343/12
[8] वक्रोक्तिजीवितम् 1.6
[9] ध्वन्यालोक 2/19
[10] ध्वन्यालोक 1

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती।।[11]

स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी आचार्यों ने अपनी मनीषा से काव्य शास्त्र के चिन्तन को अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयास किया है एवं प्रयासरत हैं। जिसमें वैश्वीकरण के इस युग का भी प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में सर्वप्रथम आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी ने ध्वनि की सशक्त परम्परा को चुनौती देते हुए अलङ्कार की अभिनव व्याख्या प्रस्तुत की। आचार्य द्विवेदी ने साहित्यशास्त्र के षट् सम्प्रदायों को प्रस्थान मात्र स्वीकार किया तथा मुख्य रूप से ध्वनि एवं अलङ्कार दो ही प्रस्थानों में रस, रीति, औचित्य एवं वक्रोक्ति का अन्तर्भाव किया है।–

अलङ्कारो ध्वनिश्चेति द्वयं तत् काव्यवर्त्मनि।
नारायणो नरश्चेति द्वयं यद्वदवस्थितम्।।[12]

आचार्य ने अलङ्कार को प्रधान तत्त्व मानते हुए ध्वनि को भी अलङ्कार ही माना है। उनके अनुसार जिस प्रकार हवनीय द्रव्य को अग्नि कवलित कर लेती है उसी प्रकार अलङ्कार भी समस्त ध्वनि प्रपंच को कवलित कर लेता है तथा काव्यजगत् में अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लेता है।

अस्मन्मते त्वलङ्कारः काव्यस्याङ्गस्य वीक्षणे।
ध्वनिं सोमं यथा वह्निः कवलीकृत्य राजते।।[13]

आचार्य द्विवेदी के अनुसार अलङ्कार एवं वक्रोक्ति काव्य के सभी धर्मों की एक मात्र संज्ञा है; जो प्रमेय रूपी काव्य में साक्षात् उपस्थित रहते हैं। इसके समर्थन में कुन्तक के सालङ्कारस्य काव्यता को प्रस्तुत किया है –

प्रमेयमात्रनिष्ठत्वादनयोरपि केवलः।
अलङ्कारो हि काव्यस्य धर्मतां याति मन्मते।।[14]

काव्यशरीर में रहने वाले प्रधान तत्त्व को ही काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। जिस प्रकार प्राणी मात्र की आत्मा शरीर से इतर नही रह सकती उसी प्रकार अलङ्कार काव्यशरीर में रहने वाले धर्म हैं

[11] चन्द्रालोक 1/08
[12] काव्यालङ्कारकारिका 30
[13] काव्यालङ्कारकारिका 33
[14] काव्यालङ्कारकारिका 45

किन्तु ध्वनि या चमत्कृति सहृदय के अन्तस् में उत्पन्न होती है अत एव अन्य के शरीर में अवस्थित तत्त्व या धर्म दूसरे के आत्मतत्त्व के रूप में स्थित नहीं हो सकता यदि ऐसा होगा तो इस मर्त्यभूतल में कोई भी मृत नही होगा।–

काव्येऽलङ्कार एवात्मा स एवास्मिन् स्थितो यतः।
अन्यकायस्थितो धर्मः किमन्यत्रात्मतां व्रजेत्।।[15]

अलङ्कार पद की भाव व्युत्पत्ति के आधार पर अलङ्कार को पर्याप्ति का वाचक मानकर उसकी उपस्थिति सौन्दर्य एवं सौन्दर्याधायक समस्त तत्त्वों में स्वीकार की है। उसकी उपस्थित काव्य में उसी प्रकार रहती है जिस प्रकार जीव और ब्रह्म में समान रूप से चैतन्य।

अलं भावो ह्यलङ्कारः स च सौन्दर्यतत्कृतोः।
विभक्तात्मा विभुर्जीवब्रह्मणोश्चिद्घनो यथा।।[16]

आचार्य द्विवेदी ने रस, औचित्य, ध्वनि एवं वक्रोक्ति सभी के लक्ष्यभूत तत्त्व को अलङ्कार के रूप में परिभाषित किया है। –

रसानां च ध्वनीनां च वक्रोक्त्यौचित्ययोरपि।
सीमाऽन्तिमोऽस्त्यलङ्कारः सा काष्ठा सा समाहितिः।।[17]

आचार्य द्विवेदी ने संस्कृत काव्यशास्त्र एवं सौन्दर्यशास्त्र की पारम्परिक मान्यताओं में अपनी अभिनव विचार सरणि के माध्यम से अहमागम अथवा अलङ्कारागम के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इन्होंने अहंकार एवं अलङ्कार को समान माना है। अपनी मान्यताओं का दार्शनिक आधार अग्निपुराण को माना है। अलं पद को ब्रह्म का पर्याय मानकर ओंकार, चमत्कार की भांति स्वार्थ में कार प्रत्यय के द्वारा अलङ्कार सिद्ध किया है। अलं पद ब्रह्म का पर्याय है इसकी सिद्धि हेतु आचार्य ने अलं ब्रह्म नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की है; जिसमें इसे युक्ति पूर्वक सिद्ध करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में आचार्य द्वारा काव्यशास्त्र के सम्बन्ध में लिखित शोधपत्रों का संकलन है। इसके प्रथम शोधपत्र का शीर्षक अलं ब्रह्म है। जिसके समर्थन में निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित अग्निपुराण की निम्न कारिका को उद्धृत किया गया है। –

अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमलं विभुम्।
वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यज्योतिरीश्वरम्।।[18]

---

[15]काव्यालङ्कारकारिका 46
[16] काव्यालङ्कारकारिका 48
[17] साहित्यालङ्कारः 017

आचार्य द्विवेदी ने अलङ्कारात्मवाद के समर्थन में स्वप्रणीत ग्रन्थ साहित्यालङ्कार में पंचक्रान्तियों का प्रकरणशः उल्लेख कर पूर्वाचार्यों की विभिन्न मान्यताओं का विशद् वर्णन प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार आनन्दवर्धन के पूर्व जितने भी काव्यशास्त्री आचार्य हुए उन सभी ने एक मत से काव्यात्मा के रूप में अलङ्कार को ही स्थान दिया। वे ध्वनिरूपी अन्धकूप में गिरे नहीं।–

तैः सर्वैरेकमत्येन काव्यात्मत्वेऽभ्यषेच्यसौ।
अलङ्कारो, ध्वनिध्वान्ते व्यलीयन्त न ते समे।।[19]

इस प्रकार आचार्य द्विवेदी ने अपने नवीन सिद्धान्त का प्रणयन कर काव्य के समस्त तत्त्वों एवं धर्मों को अलं तत्त्व में समाहित करने का सराहनीय प्रयास किया है।

आचार्य ब्रह्मानन्द शर्मा ने मम्मट प्रोक्त अलङ्कार लक्षण पर वैमत्य प्रदर्शित करते हुए कहा है कि काव्य में अलङ्कारों की उपस्थिति को हारादिवत् मानना समीचीन नहीं है क्यों कि अलङ्कार काव्य शरीर में समवाय सम्बन्ध से रहते हैं जब कि शोभाधायक हारादि संयोग सम्बन्ध मात्र से ही शरीर की शोभा बढ़ाते हैं। इसके विपरीत अलङ्कार जब स्वाभाविक रूप से आते हैं तो वे रस के धर्म बन जाते हैं।

हारादिवदलङ्कारा इत्युक्तं ध्वनिवादिभिः।
शरीरादि्ध पृथग्हारो नेयं स्थितिरलङ्कृतेः।।[20]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने स्वप्रणीत अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम् नामक ग्रन्थ में 'अलङ्कारः काव्यजीवनम्'[21] इस उद्घोषणा से अलङ्कार को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। इन्होंने अलङ्कार घटक अलं पद के उत्स के रूप में वैदिक उपपद अरम् को माना ; जो वेदों में अनेकधा प्रयुक्त किया गया है। वैदिक पद अरम् ऋ गतौ धातु से निष्पन्न है; जो गति या प्रक्रिया अर्थ को व्यक्त करता है। यथा –

का ते अस्त्यरङ्कृति सूक्तैः।[22]

उन्होंने अमरकोशकार के अनुसार अलम् पद को भूषण, वारण एवं पर्याप्त्यर्थक मानकर निरूपित किया है।

अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्।[23]

---

18 अग्निपुराण 339.1
19 साहित्यालङ्कारः पृ. 25
20 काव्यसत्यालोक पृ. 29
21 अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम् 2/1/1
22 ऋग्वेद .7.29.3

इनके अनुसार अलङ्कार में भूषण काव्य एवं कलाओं में आधिभौतिक स्तर का, वारण आधिदैविक स्तर का तथा पर्याप्ति आध्यात्मिक स्तर का परामर्शक है। फलतः अलङ्कार काव्य में भूषण, वारण एवं पर्याप्ति का आधान करता है। इसी अलङ्कार में अलङ्कारशास्त्रियों द्वारा अभिमत उपमादि, गुण, रीति एवं रस का अन्तर्भाव किया जा सकता है। –

आधिभौतिकाधिदैविकाध्यात्मिकविश्वत्रयसमुन्मीलनपुरस्सरं भूषणवारणपर्याप्त्याधायकत्वमलङ्कारत्वम्।

काव्यशरीर में भूषण का आधान करने के लिए कवि यमकादि का विन्यास करता है। अनुप्रासादि से वाक् शरीर का प्रसाधन कर वक्रोक्ति आदि से अलङ्कार स्वरूप का विस्तार करता है। वारण के माध्यम से कवि अनपेक्षित तत्त्वों का निवारण कर ग्राह्य तत्त्वों का संयोजन करता है। वारण काव्य के शिल्पगत सौन्दर्य में वृद्धि करता है। जिस प्रकार मूर्तिकार प्रस्तर के अनपेक्षित तत्त्वों को निकालकर रमणीय मूर्ति का निर्माण करता है। इस प्रकार भूषण और वारण के माध्यम से काव्य में पर्याप्ति का आधान होता है।

आचार्य त्रिपाठी ने स्वप्रणीत काव्यलक्षण' लोकानुकीर्तनं काव्यम्' के माध्यम से लोक एवं अनुकीर्तन पद की स्पष्ट व्याख्या की है। उनके अनुसार परस्पर अनुषक्त आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक त्रिविध लोकों का समुल्लास ही जीवन है। यही साहित्य में फलित रूप से दृष्टिगोचर होता है। लोक के अनून्मीलन, अनुदर्शन, अनुभव एवं अनुव्याहरण रूपी चतुर्विध अनुकीर्तन से काव्य में पूर्णता आती है। ये पूर्णता ही अलङ्कार है। अतः अलङ्कार ही काव्य है। –

स च लोकस्त्रिविधः। अनुकीर्तनं चतुर्विधम्। तेनास्य पूर्णता। पूर्णता चालङ्कारः। तेन अलङ्कार एव काव्यम्।[24]

कवि काव्य में चतुर्विध (वृत्ति, रीति, मार्ग और रस) व्यापार के द्वारा अलम्भाव का आधान करता है। इसलिए अलम्भाव, पूर्णता एवं अलङ्कार समानार्थक ही हैं।

अलम्भावस्तु पूर्णता।[25]

अलम्भाव में चेतना का व्यापकीभाव होता है तथा प्रमाता शुद्ध प्रकाश मात्र रूप होता है। इसके अतिरिक्त आचार्य त्रिपाठी ने अलङ्कार के बहुधा भेद प्रभेद किए हैं; जो उनकी अलङ्कारविषयिणी सूक्ष्म दृष्टि के परिचायक हैं। जिनका विवरण निम्न है –

---

23 अमरकोष पृ. 240

24 अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम् 1/1/2,7–10

25 अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम् 2/3/1

आचार्य अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने स्वप्रणीत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ अभिराजयशोभूषण में पारम्परिक आचार्यों के काव्यात्मविषयक मतों का प्रस्तुतीकरण करते हुए अपने मत को दृढ़ता से उपस्थापित किया है। इनके अनुसार ध्वनि सिद्धान्त काव्यात्मवादी सिद्धान्तों में रस, अलङ्कार एवं रीति के अनन्तर चतुर्थ स्थान पर आता है फिर भी यह सर्वमान्य एवं स्थिर सिद्धान्त है।–

तथापि ध्वनिसिद्धान्तः सर्वतत्त्वसमन्वितः।
सर्वमान्यः स्थिरश्चेति कृत्वा पश्चात्समीहते।।[26]

वाच्यार्थ शब्द एवं अर्थ के पारस्परिक सम्बन्ध से द्योतित होता है अत एव वह काव्यात्मभूत नही हो सकता तथा लक्ष्यार्थ कोविदों में ही व्यवहृत होता है। एक मात्र सहृदयों द्वारा श्लाघ्य व्यङ्यार्थ ही काव्य का आत्मभूत तत्त्व है; जिसमें चित्त द्रुत गति से विश्रान्त हो जाता है।[27]

निष्कर्षतः अलङ्कार काव्य शरीर के अवयव शब्दार्थ के धर्म हैं तथा काव्याङ्ग के रूप में काव्य के महत्वपूर्ण तत्त्व हैं किन्तु काव्यात्म तत्त्व के रूप में इनका वर्णन चिन्त्य है। अलङ्कार शब्द की अद्भुत व्याख्या करने मात्र से उनका आत्मत्व सिद्ध होना सम्भव नही है। यदि काव्यशास्त्री आचार्य रस, गुण, रीति, वृत्ति, ध्वनि आदि समस्त तत्त्वों को अलङ्कार में ही अन्तर्भूत मान लेंगे तो काव्यशरीर में अङ्गाङ्गिभाव स्पष्ट करना दुष्कर हो जाएगा। आधुनिक

[26] अभिराजयशोभूषण पृ.181
[27] अभिराजयशोभूषण पृ. 189

काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने स्वप्रतिभावैशिष्ट्य से काव्यशास्त्रीय चिन्तन की श्रीवृद्धि कर नवीन दिशा प्रदान की है; जो शोधार्थियों तथा जिज्ञासुओं की पथ प्रदर्शक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. काव्यालङ्कार भामह, शर्मा देवेन्द्र नाथ, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् प्रकाशन वर्ष 1985।
2. काव्यादर्श–दण्डी, गुप्त धर्मेन्द्र कुमार, मेहरचन्द लछमनदास, दरियागंज, दिल्ली प्र. सं. 1977।
3. अग्निपुराण–व्यास, द्विवेदी शिवप्रसाद,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली प्र. सं. 2004।
4. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति, वामन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, वर्ष 1994
5. वक्रोक्तिजीवितम्, मिश्र राधेश्याम, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, द्वि0 सं0 1980।
6. ध्वन्यालोक आनन्दवर्धन, राय गंगासागर, चौखम्बा संस्कृत भवन, प्रथम संस्करण 2004।
7. चन्द्रालोक–जयदेव, त्रिपाठी श्रीकृष्णमणि,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, तृ.सं. 1984।
8. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, त्रिपाठी राधावल्लभ, जगदीश पुस्तक भण्डार जयपुर प्रकाशन वर्ष 2009।
9. काव्यालङ्कारकारिका, द्विवेदी रेवाप्रसाद, कालिदास संस्थानम् वाराणसी वर्ष 2001।
10. साहित्यालङ्कार, द्विवेदी रेवाप्रसाद, कालिदास संस्थानम् वाराणसी वर्ष 2016।
11. अभिराजयशोभूषण, मिश्र अभिराजराजेन्द्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष 2006।
12. काव्यसत्यालोक, शर्मा ब्रह्मानन्द, पारसी मन्दिर के पास नसीराबाद रोड, अजमेर, राजस्थान, प्र0 सं0 1980।
13. अमरकोष, अमरसिंह, चौखम्भा ओरियन्टालिया दिल्ली, वर्ष 2008।